गरुड[1] और विनता की शिवभक्ति

पूर्वकाल में कद्रू और विनता – ये दोनों बहनें परस्पर खेल रही थीं। ये दक्ष प्रजापति की कन्याएँ और मरीचिनन्दन कश्यप की धर्मपत्नियाँ थीं। उस खेल में कद्रू ने अपनी बहन से कहा – 'विनते! सूर्य के रथ में जो उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा सुना जाता है, उसका रूप कैसा है, जानती हो तो कहो। हम दोनों शर्त रखकर इसका निर्णय करें, जो जिससे पराजित हो, वह उसकी दासी हो। हमारी इस प्रतिज्ञा में ये सब सखियाँ साक्षी हैं।' इस प्रकार आपस में शर्त रखकर कद्रू ने सूर्य के घोड़े को चितकबरा बताया और विनता ने श्वेत कहा। विनता के चले जाने पर कद्रू ने अपने पुत्रों को बुलाकर कहा – 'तुम मेरे वचन से शीघ्र ही उच्चैःश्रवा घोड़े के समीप जाओ और उसे श्याम रंग से युक्त चितकबरा कर दो।' कद्रू के बुद्धिमान् पुत्रों ने उच्चैःश्रवा के पास जाकर उसके शरीर को जगह – जगह से काले केश के समान चितकबरा कर दिया। कद्रू और विनता दोनों ने सूर्य के रथ में घोड़े को कुछ – कुछ काले रंग से युक्त अर्थात् चितकबरा देखा। तब विनता ने कहा – 'बहन! तुम्हारी ही बात सत्य निकली, अतः तुमने मुझे जीत लिया।' तब से विनता कद्रू की दासी हो गयी। तदनन्तर विनता के पुत्र गरुड ने नागों को अमृत देकर अपनी माता को दासीभाव से मुक्त किया। दासीपन से छुटकारा मिलने पर विनता ने गरुड से कहा – 'बेटा! मैं दास्यजनित दुष्कृत को दूर करने के लिये काशीपुरी जाऊँगी, वहाँ साक्षात् भगवान् विश्वनाथ चन्द्रमा का आभूषण धारण किये तारकमन्त्ररूपी नौका के द्वारा दुस्तर संसार – सागर से सबको पार लगा देते हैं। जिनपर भगवान् विश्वनाथ की कृपा होती है और जिनके समस्त कर्मबन्ध न टूट जाते हैं, उन्हीं मनुष्यों की बुद्धि काशीपुरी में निवास करने की होती है। समस्त पाप धुल जाने के कारण जिनका मन काशीपुरी में निवास करने के लिये उत्सुक होता है, वे ही इस संसार में वस्तुतः मनुष्य हैं। दूसरे लोग तो मनुष्य के रूप में पशु ही हैं।'

माता की यह बात सुनकर गरुड ने नमस्कार करके कहा – मैं भी भगवान् शिव से सम्मानित काशीपुरी का दर्शन करने के लिये चलूँगा। तत्पश्चात् माता की आज्ञा पाकर पक्षिराज गरुड उन्हीं के साथ क्षणभर में मोक्षभूमि वाराणसीपुरी में आ पहुँचे। वहाँ इन दोनों ने बड़ी भारी तपस्या की। अविचल इन्द्रियोंवाले पक्षिराज गरुड ने शिवलिङ्ग की स्थापना की और विनता ने खखोल्क[2] नामक 'आदित्य' को स्थापित किया। थोड़े ही दिनों में उन दोनों की तीव्र तपस्या से काशी में भगवान् शङ्कर और सूर्यदेव

---

1. संस्कृत में 'गरुड़' को 'गरुड' कहते हैं क्योंकि संस्कृत भाषा में किसी भी अक्षर के नीचे बिन्दु नहीं लगाया जाता चाहे वह 'ड' हो या 'ढ' हो।
2. एक बार गरुड की माता विनता सर्पों की माता कद्रू को पीठ पर चढ़ाकर सूर्य – मण्डल के समीप ले गयी। कद्रू सूर्य का ताप सहन न कर सकने के कारण मूर्छित सी होने लगी और घबराहट में बोल उठी – 'खखोल्का निपतेत्।' वह कहना चाहती थी, 'सखि उल्का निपतेत्' – सखी! उल्का गिरेगी। परंतु निकल गया – 'खखोल्का' तब से सूर्य की 'खखोल्क' संज्ञा हो गयी।

दोनों प्रसन्न हो गये। गरुड द्वारा स्थापित शिवलिङ्ग से उमानाथ भगवान् शिव प्रकट हुए और उन्होंने गरुड को बहुत से अत्यन्त दुर्लभ वरदान दिये–'पक्षिराज! मेरे यथार्थ रहस्य को, जिसे देवता भी नहीं जान सके हैं, तुम जान लोगे। तुम्हारे द्वारा स्थापित यह लिङ्ग गरुडेश्वर के नाम से विख्यात होगा। इसका दर्शन, स्पर्श और पूजन मनुष्यों को परम ज्ञान देनेवाला होगा। हम ही वह विष्णु हैं और वह विष्णु ही हम हैं, हम दोनों में तुम्हारी भेददृष्टि नहीं होनी चाहिये। तुम भगवान् विष्णु के श्रेष्ठ वाहन होकर स्वयं भी पूजनीय हो जाओगे।' अपने भक्त गरुड को इस प्रकार वरदान देकर भगवान्–शङ्कर वहीं अन्तर्धान हो गये और गरुडजी भी भगवान् विष्णु के वाहन होकर भूमण्डल में सबके लिये पूजनीय हो गये।

तदनन्तर एक दिन तपस्या में संलग्न हुई विनता को देखकर शिव के ही दूसरे स्वरूप 'खखोल्कादित्य' नामक सूर्यदेव प्रकट हुए और उन्होंने विनता को शिवज्ञान से युक्त पापनाशक वरदान दिया। वरदान देकर वे काशी में ही रह गये और विनतादित्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार काशी के विघ्नस्वरूप अन्धकार का नाश करनेवाले खखोल्क नामक आदित्य वहाँ निवास करते हैं। उनके दर्शनमात्र से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। काशी में पैशङ्गिल (पिलपिला) तीर्थ में भगवान् खखोल्कादित्य का दर्शन करने से मनुष्य क्षणभर में नीरोग हो जाता है और मनोवाञ्छित वस्तु को प्राप्त करता है।

(उपर्युक्त कथा गीताप्रेस, गोरखपुर के स्कंदपुराणांक के काशीखण्ड के अध्याय 50 पर आधारित है।)

❀❀❀❀❀❀

तीर्थों के माहात्म्य को बतलाते हुये सनत्कुमारजी कहते हैं–

आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था, सत्योदका शीलसमाधियुक्ता।
तस्यां स्नातः पुण्यकर्मा पुनाति, न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा।।

(वाम. पु. सरो माहात्म्य 22/24)

यह आत्मा एक नदी के समान है जो संयमस्वरूप पुण्य से तीर्थरूप है। सत्य ही इसका जल है और शील तथा समाधि से यह समन्वित है। उस नदी में स्नान करनेवाला महान् पुण्य कर्मोंवाला होता है तथा वह पवित्र जो जाता है। जल से यह अन्तरात्मा कभी नहीं शुद्ध होता।